
प्रवचन-२०२, गाथा-१७०, श्लोक २८६, सोमवार, आषाढ़ कृष्ण ९, दिनांक ०४-०८-१९८०

नियमसार, १७० गाथा । इसका दूसरा पैराग्राफ । जरा सा ज्ञान का वर्णन करते हैं । आचार्य ने स्वयं के लिये बनाया है न, इसलिए एकदम बहुत स्पष्ट करते हैं । लगे साधारण को सूक्ष्म परन्तु स्पष्ट बराबर करते हैं । यह आत्मा... अज्ञानी वितर्क करता है ।

वह (विपरीत वितर्क — प्राथमिक शिष्य का अभिप्राय) किस प्रकार है ? (वह इस प्रकार है: —) “पूर्वोक्तस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) आत्मा को आत्मा वास्तव में जानता नहीं है,... आहाहा ! मात्र आत्मा आत्मा में स्थिर हो गया । स्थिर होने के पश्चात् जानना

कहाँ रहा ? जानना और जाननेवाला, ऐसा कि विकल्प है। तर्क करता है, हों! बात मिथ्या है। व्यवहारवाला तर्क करता है कि आत्मा अपने में स्थिर हो जाता है, फिर और जानना, ऐसा विकल्प कहाँ रहा ? ऐसा कहता है। कहो, ऐसी बात परन्तु...

आचार्य ने स्वयं के लिये यह बनाया है। उसमें एक-एक की स्पष्ट बात। केवलज्ञान की भी स्पष्ट बात करते हैं। “पूर्वोक्तस्वरूप (ज्ञानस्वरूप) आत्मा को आत्मा वास्तव में जानता नहीं है, स्वरूप में अवस्थित रहता है... आहाहा! पर का तो करे नहीं, पर से तो अपने में कुछ होता नहीं। परन्तु शिष्य का तो प्रश्न यह है कि आत्मा आत्मा को भी जानता नहीं। क्योंकि आत्मा आत्मा को जाने तो द्विविध विकल्प उठे। इसलिए आत्मा स्थिर है, उसमें जानता नहीं। ऐसा उसका प्रश्न। आहाहा! इस प्रश्न में तो ऐसा आया कि ज्ञानस्वरूप भगवान अपने अतिरिक्त किसी दूसरी चीज़ को स्पर्श नहीं करता और कर नहीं सकता। यह बात तो बराबर है। परन्तु आत्मा, आत्मा को स्थिर होकर जानता है, आत्मा आत्मा में स्थिर होकर जानता है, यह किस प्रकार ? यह प्रश्न है। आहाहा! डाह्याभाई! प्रश्न का हेतु यह है कि भगवान ज्ञानस्वरूपी आत्मा, वह अपने अतिरिक्त पर का तो कुछ करे नहीं। एक अक्षर भी लिख नहीं सके। अक्षर भी बोल नहीं सके। आहाहा! यह कैसा लगे लोगों को ? यह तो सवेरे था, आहार आत्मा ले नहीं सकता। ओहोहो!

मुमुक्षु : उसे देह ही नहीं न! आत्मा को देह ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरक है परन्तु... प्रेरक पर का कुछ कर सके, ऐसा नहीं।

जैसे ध्वजा, वायु प्रेरक है। ध्वजा होती है न, ध्वजा ? वायु प्रेरक है तो भी वायु उसे कुछ करती नहीं। क्या कहा ? ध्वजा है न, ध्वजा ? ऐसे जो हवा आती है तो वह प्रेरक है। वायु प्रेरक है, तथापि वह कपड़े को हिला नहीं सकती। धर्मास्ति आदि प्रेरक नहीं है। स्वयं गति करे तो है - निमित्तरूप से है। निमित्त से होता नहीं। धर्मास्तिकाय है तो आत्मा गति करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! धर्मास्तिकायवत् सर्व जगत में... धर्मास्तिकायवत् निमित्त कहा है। इष्टोपदेश, इष्टोपदेश में ३५वीं गाथा, ३५वीं गाथा। जगत में सब निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं। अर्थात् निमित्त पर में कुछ नहीं करता। निमित्त तटस्थ रहता है और प्रत्येक द्रव्य का अपनी पर्याय का कार्य स्वयं से होता है। यह इष्टोपदेश की ३५वीं गाथा में कहा है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं होगा।

परमाणु का नहीं कर सकता। इस हाथ का नहीं कर सकता। कर्म नहीं बाँध सकता। आत्मा कर्म नहीं बाँध सकता, कर्म नहीं तोड़ सकता, क्योंकि कर्म परमाणु स्वतन्त्र है। उनकी पर्याय में कर्म होनेयोग्य हो तो होते हैं और कर्म की पर्याय बदलकर अकर्मरूप होना (होवे तो वह स्वयं होती है)। कर्म के नाश का अर्थ, कहीं कर्म का नाश नहीं होता। नाश का अर्थ—अकर्मरूप पर्याय परिणमे, उसका नाम नाश किया। आहाहा! वीतरागवाणी, दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। आहाहा! उनकी एक-एक बात में पूरा चौदह ब्रह्माण्ड का रहस्य भरा है, परन्तु लोग पढ़ते नहीं और पढ़कर भी ऐसा का ऐसा अपनी दृष्टि प्रमाण दिये रखते हैं। ऐसा नहीं होता, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है।

परमात्मा सर्वज्ञ वीतराग कहते हैं कि इस वायु को भी प्रेरक कहा जाता है, ध्वजा के लिये, परन्तु फिर भी प्रेरक वायु के कारण वह ध्वजा हिलती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा पर के किसी कार्य में प्रेरक है, ऐसा नहीं है। परन्तु शिष्य का प्रश्न तो इससे विशेष है। पर का कर्ता और प्रेरक तो नहीं है परन्तु अपने में स्थिर, स्वयं तो अपने को भी नहीं जानता। और स्थिर होना और जानना ये दो कहाँ से आये? आहाहा! यह तो आचार्य स्वयं तर्क उठाकर व्यवहारवाले को बुलाते हैं। व्यवहारवाले ऐसा बोलते हैं। आहाहा!

(-आत्मा में मात्र स्थित रहता है)। जिस प्रकार उष्णतास्वरूप अग्नि के स्वरूप को (अर्थात् अग्नि को) क्या अग्नि जानती है? यह शिष्य का प्रश्न है। अग्नि की उष्णता को अग्नि जानती है? आहाहा! उष्णतास्वरूप अग्नि के स्वरूप को (अर्थात् अग्नि को) क्या अग्नि जानती है? क्या अग्नि अपने स्वरूप को जानती है? (नहीं ही जानती।) उसी प्रकार ज्ञानज्ञेय सम्बन्धी विकल्प के अभाव से... इसका कहने का आशय अब यहाँ है। आत्मा, ज्ञान और स्वयं को जाने, ज्ञेय—दो कहाँ से आये? समझ में आया? पूछनेवाले का हृदय यह है। आचार्य को यह स्पष्ट करना है कि यह आत्मा ज्ञान है। आपने तो यहाँ तक कहा कि एक रजकण को भी ग्रहण नहीं करता। आहाहा! रजकण को भी स्पर्श नहीं करता। तब यह ज्ञान और ज्ञेय दो है न? जाननेवाला और जानने में आनेवाला स्वयं आत्मा। जाननेवाला आत्मा और ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय आत्मा। ऐसे दो हुए। ज्ञानज्ञेय सम्बन्धी विकल्प... ज्ञान और ज्ञेय सम्बन्धी... आहाहा! गजब बात है। कहाँ ले जाते हैं! अभाव से यह आत्मा आत्मा में (मात्र) स्थित रहता है... शिष्य का व्यवहार का

प्रश्न है। आत्मा तो आत्मा में स्थिर (रहता है), बस। पर का कर्ता नहीं और अपने को जानता नहीं। आहाहा!

इसका उत्तर। (उपरोक्त वितर्क का उत्तर:—) ऊपर कहे हुए वितर्क का उत्तर। “हे प्राथमिक शिष्य! अग्नि की भाँति क्या आत्मा अचेतन है... आहाहा! प्रश्न क्या है? कि आत्मा पूर्ण हो जाता है। स्थिर-स्थिर (हो जाता है), फिर और अपने को जाने, ऐसा कहाँ से आया? ऐसा कहता है। अन्तिम अवस्था हुई। स्थिर हो गया, केवलज्ञान हो गया। अपने में स्थिर हुआ, वह स्वयं अपने को जाने, ऐसे दो भेद कहाँ से आये? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आहाहा! यह विकल्प भी उसे होता नहीं, ऐसा कहता है। शिष्य तो प्रश्न करता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

अन्तर चैतन्य की महिमा का पार नहीं है, प्रभु! चैतन्य में अनन्त रत्न भरे हैं। चैतन्य रत्नाकर। चैतन्यरूपी रत्नों का आकर—समुद्र। आहाहा! परन्तु उसमें ज्ञेय, स्वयं ज्ञेय है, उसे ज्ञान नहीं जानता, ऐसा नहीं है। भले ज्ञान और ज्ञेय, ऐसे दो भेद पड़े। आहाहा! परन्तु न जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार की १४२ गाथा। आत्मा जाननेवाला है और आत्मा जानता है अपने को, ऐसा करे तो विकल्प होता है। वह दूसरी चीज़ है। समझ में आया? यह कहा कि आत्मा स्वयं अपने को जाने, अपने को जाने। वह यहाँ पहले समयसार में भी आ गया। वह अपने को जाने, उसमें भी दो भेद आ गये। वह तो ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। आहाहा! आ गया, आ गया न! और वहाँ भी गाथा ली है कि आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला है, यह भी सद्भूतव्यवहारनय हुआ। व्यवहारनय हुआ। आहाहा! अभी यह तो बाहर के व्यवहार में रुका है। पर का करूँ, दया पालूँ, व्रत करूँ, यह करूँ और वह करूँ। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि अपने स्वरूप में स्थिर हुआ और अपने को जाने, ऐसा कहाँ से हुआ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

कहा कि भाई! अग्नि की भाँति क्या आत्मा अचेतन है... अग्नि तो अचेतन है। आत्मा क्या अचेतन है? (कि जिससे वह अपने को न जाने)? आहाहा! यहाँ तो जानना... जानना... जानना... जानना... पर को; स्व को जानने के अतिरिक्त कोई बात आत्मा में नहीं है। आहाहा! हसमुखभाई! कभी सुना नहीं। वहाँ तुम्हारी बहियों में कुछ नहीं मिलता। पुस्तकें रखी हो तो पढ़ी न हो। पढ़े तो वापस समझे नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मेहनत करे तो समझ में आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पत्थर छोड़कर निवृत्त हो तब न ? इसकी कहाँ बात है ? यह हमारे मनसुख, चावल की बोरियों के ढेर किया करता है, मकान में। मकान में जाते थे न तो बोरियाँ की बोरियाँ भरी है। आहाहा! इसमें से निवृत्त कब होगा ?

यहाँ तो वहाँ तक प्रश्न किया, शिष्य के मुख में यह प्रश्न रखकर इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि आत्मा अपने को जानता है ? नहीं। स्थिर होता है। तो उत्तर कहते हैं कि भाई! ज्ञान है, वह जैसे अग्नि, अग्नि को नहीं जानती। अग्नि में ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार क्या आत्मा में ज्ञान नहीं है ? आहाहा! है ? अग्नि नहीं जानती। **अधिक क्या कहा जाये ? (संक्षेप में,) यदि उस आत्मा को ज्ञान न जाने तो वह ज्ञान, देवदत्त रहित कुल्हाड़ी की भाँति,...** आहाहा! क्या कहा ? दृष्टान्त है, हों! कुल्हाड़ी से कर सकता है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। यह तो दृष्टान्त देकर समझाते हैं। कुल्हाड़ी को तो वह कुल्हाड़ीवाला स्पर्श नहीं करता और हिला नहीं सकता, परन्तु यहाँ तो दृष्टान्त देकर उसमें से न्याय बताना है। इसलिए फिर यह कहते हैं कि देखो! एक ओर निषेध करते हैं कि पर का कुछ नहीं करता और यहाँ कुल्हाड़ी से काटता है। भाई! सुन न, भगवान! तेरे स्वरूप की बलिहारी है, बापू!

तू तेरे स्वरूप में स्थिर रहे, तो भी अपने को जाने बिना नहीं रहता और फिर भी विकल्प नहीं होता। राग-विकल्प नहीं होता, ऐसा तेरा स्वरूप है, प्रभु! आहाहा! अपने में स्थिर रहे और अपने को जाने, ऐसा कैसे बने ? ऐसे बने क्या ? इसमें ऐसा स्वभाव है। स्वयं स्थिर भी रहे और अपने को जाने। जाननेवाली चीज़ है। अग्नि कोई जाननेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! कहाँ ले गये बात! साधारण लोगों को तो बेचारों को... अभी एकड़े की खबर नहीं होती, यह बड़ी... एल.एल.बी. और एम.ए. की बात करते हैं, ऐसा अन्दर से लगता है। तत्त्व की शुरुआत यहाँ से है।

नव तत्त्व में जीवतत्त्व जो है, वह पुण्य-पाप, आस्रव, और बन्धतत्त्वरूप नहीं है। नहीं तो भेद पड़े नहीं। परन्तु यह ज्ञायकतत्त्व है तो संवर-निर्जरा-मोक्षरूप भी नहीं है, क्योंकि वह पर्याय भिन्न है। आहाहा! पर्याय में द्रव्य आता नहीं और पर्याय द्रव्य को स्पर्श करती नहीं। बहुत सूक्ष्म बात पड़ती है, प्रभु! पर को तो स्पर्श नहीं करती। पर्याय का अस्तित्व द्रव्य की अपेक्षा बिना षट्कारक से कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान,

अधिकरण से प्रत्येक द्रव्य की पर्याय षट्कारक से स्वयं से होती है। आहाहा! तो उस समय कर्ता आत्मा स्थिर होकर कर्म—जानने का कार्य तो करता ही है। आहाहा! पर्याय की बात है न? ध्रुव में कहाँ है? ध्रुव में कहाँ करने का है? ध्रुव तो ध्रुव है। वह तो एकरूप त्रिकाल ध्रुव है, उसमें तो पलटना, बदलना होता नहीं। पर्याय में स्थिर रहे और जाने, यह दोनों स्वभाव पर्याय के हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों कार्य करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों कार्य भिन्न हैं। आहाहा!

इस प्रकार ऐसा कहकर क्या कहते होंगे? ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू ज्ञानस्वरूप है न! तुझमें स्थिर होगा तो भी तुझे जानना छूटेगा नहीं। आहाहा! तेरा स्वभाव ज्ञान है। किसी को करना और किसी को छूना, वह तो तेरे स्वरूप में नहीं है। परन्तु तुझे जानना नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा लिया है। बहुत निकाल करते-करते तो शिष्य कहता है, अपने में स्थित हो तो अपने को जानता भी नहीं। क्योंकि दो भेद हो गये। ज्ञेय और ज्ञायक आया न? अन्दर आया न?

अर्थक्रियाकारी सिद्ध नहीं होगा,... नीचे (फुटनोट में) अर्थ। **अर्थक्रियाकारी= प्रयोजनभूत...** अर्थ अर्थात् प्रयोजनभूत। **क्रिया करनेवाला।** (जिस प्रकार देवदत्त के बिना अकेली कुल्हाड़ी अर्थक्रिया—काटने की क्रिया—नहीं करती,...) ऐसी शंका नहीं करना कि एक ओर कुछ कर नहीं सकता और फिर यह कुल्हाड़ी से काटता है। यह तो दृष्टान्त है। **कुल्हाड़ी अर्थक्रिया—काटने की क्रिया—नहीं करती, उसी प्रकार यदि ज्ञान आत्मा को न जानता हो तो ज्ञान ने भी अर्थक्रिया—जानने की क्रिया—नहीं की; इसलिए जिस प्रकार अर्थ क्रियाशून्य... प्रयोजनभूत जानने का शून्य। कुल्हाड़ी देवदत्त से भिन्न है। उसी प्रकार अर्थक्रियाशून्य ज्ञान आत्मा से भिन्न होना चाहिए!** ज्ञान और आत्मा भिन्न होना चाहिए। आहाहा! कितनी बात कही है? आहाहा! यह तो बाहर की प्रवृत्ति का अभिमान छोड़ता नहीं। यह किया, मैंने यह किया, मैंने पुस्तक बनायी, मैंने छब्बीस लाख का मकान बनाया। कौन बनावे? प्रभु! वह तो परमाणु की पर्याय उस समय में होनेवाली है, उसे कारीगर ने की नहीं, रामजीभाई ने की नहीं, हमारे वजुभाई ने की नहीं। आहाहा! वह तो उस समय में वह पर्याय होनेवाली थी। आहाहा! कोई पैसे देनेवालों ने की नहीं। आहाहा!

पर का कुछ करे नहीं तो स्थिर होने में अपने को न जाने, उसमें क्या ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। उत्तर दिया कि परन्तु यह तो स्वरूप से विरुद्ध है। अग्नि उष्णता को जाने नहीं। वह तो जड़ है। इसी प्रकार ज्ञान आत्मा को जानता ही है। ज्ञान तो आत्मा को जानता ही है। आहाहा! अर्थक्रियाकारी है। ज्ञान की प्रयोजनभूत क्रिया यह जानना है। आहाहा! आत्मा, आत्मा को जाने, ऐसा विकल्प क्यों करता है ? कि विकल्प नहीं, यह स्वरूप है। आत्मा अपने को जाने, ऐसा उसका स्वरूप है।....

दूसरी लाईन। ज्ञान और ज्ञेय सम्बन्धी विकल्प। ऊपर की लाईन में। आत्मा ज्ञान और अपने को जाने, ऐसा विकल्प उसमें नहीं है। वह तो उसका स्वभाव ही है। आहाहा! जानना, वह एक ही आत्मा का स्वभाव है। पंच महाव्रत को पालना, पर की दया पालना, परोपकार के काम करना, गौशाला बनाना, वह कुछ कर नहीं सकता। वह कुछ कर नहीं सकता। उसी तरह अपने को जान नहीं सकता, ऐसा नहीं है। अन्दर स्थिर हुआ तो अपने को जानकर स्थिर है। अपने को बराबर जानता है। समझ में आया ? इसीलिए आत्मा से भिन्न सिद्ध हो गया।

(अर्थात् ज्ञान और आत्मा की सर्वथा भिन्नता तो)... ज्ञान और आत्मा भिन्न हों तो ज्ञान न जाने। परन्तु यहाँ तो अभिन्न है। वास्तव में स्वभाववादियों को सम्मत नहीं है। आहाहा! ज्ञान आत्मा, आत्मा में स्थिर वीतराग हो जाए और जाने नहीं, यह स्वभाववादियों को सम्मत नहीं है। स्वभाववादी सिद्ध किया। आहाहा! अपना स्वभाव ज्ञान है। वह ज्ञान, ज्ञान को जानता है। नहीं जानता, यह स्वभाववादियों को मान्य नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बात। उसमें पूरे दिन इच्छामि... आहाहा! प्रतिक्रमण करना और निर्दोष आहार लेना, सदोष (आहार) छोड़ना। अरे! प्रभु! यह व्यवहार से कथनशैली आती है परन्तु यह सब जाननेयोग्य है। आत्मा जानने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। आहाहा! चाहे जितने जिनके बड़े व्यापार हो मिल के, एक तिनका भी बदल नहीं सकते। परन्तु उस पर को बदल नहीं सकते तो अपने में स्थिर होकर अपने को जानता नहीं, ऐसा नहीं है। अपने को जान सकता है। ज्ञाता स्थिर होकर, आनन्द में, आनन्द में स्थिर होकर अपने को-ज्ञेय को जानता है। ज्ञाता अपने ज्ञेय को जानता है। ज्ञाता ज्ञेय को जानता है, इसलिए विकल्प उठते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

वास्तव में स्वभाववादियों को सक्कमत नहीं है। (इसलिए निर्णय कर कि ज्ञान आत्मा को जानता है।) निर्णय कर। आत्मा ज्ञान को ज्ञान से जानता है। स्थिर होकर भी जानता है, केवलज्ञान होने पर भी जानता है। आहाहा! अपने को जाने बिना रहता नहीं। जानने का उसका स्वभाव है। स्वभाववादियों को यह मान्य नहीं कि स्वयं अपने को नहीं जानता। जिसने स्वभाव माना, भगवान आत्मा का ज्ञानस्वरूप, स्वभाव है—ऐसा जिसने माना, उसे तो ज्ञान ज्ञेय को जानता है। विकल्प बिना जानता है। भेद होने पर भी विकल्प होता नहीं। आहाहा!

कर्ताकर्म (अधिकार) में तो यहाँ तक कहा है कि मैं ज्ञायक हूँ, यह भी विकल्प है। १४२ (गाथा)। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प राग है, तब तक तुझे क्या लाभ है? आहाहा! कर्ताकर्म में यह लिया है। १४२ गाथा। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प करने से तुझे क्या लाभ है? आहाहा! ज्ञायक स्व को जानता हूँ, उससे भी तुझे क्या लाभ है? भेद हुआ। यह भेद यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा! किस अपेक्षा से कहा है? वहाँ कर्ताकर्म में इनकार करते थे। आत्मा, आत्मा को जानता है, यह विकल्प है, राग है। सद्भूतव्यवहारनय का विकल्प है। आहाहा! निश्चयनय भी नहीं। यहाँ (शिष्य) कहता है, जानता नहीं। तो यह कहते हैं कि जाने बिना रहता नहीं। आहाहा! ज्ञान आत्मा को जानता है।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में १७४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।

तस्मादच्युतिमाकाङ्क्षन् भावयेज्ज्ञानभावनाम्॥

श्लोकार्थः—आत्मा ज्ञानस्वभाव है; स्वभाव की प्राप्ति... आहाहा! वह अच्युति (अविनाशी दशा) है;... अपना ज्ञानस्वभाव आत्मा अपने को जाने, वह अविनाशी वस्तु है। आहाहा! यह दया, दान का राग आता है, उसे ज्ञान जाने, वह भी निश्चय नहीं है। वह सद्भूतव्यवहारनय है, सद्भूत उपचार व्यवहारनय है। आहाहा! क्या कहा? अन्दर व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा समकित सहित। समकित बिना व्यवहार नहीं होता। जिसे सम्यक् अनुभवसहित व्यवहार है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र के ज्ञान का विकल्प, उसे जानना, वह भी सद्भूत उपचार व्यवहारनय है; निश्चय नहीं।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान अपने को जाने, वह निश्चय है। किस अपेक्षा से कहा? समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि ज्ञान अपने को जाने। वहाँ कर्ताकर्म में लिया कि आत्मा आत्मा को जानता है, यह भी भेद है। व्यवहारनय से तुझे क्या प्रयोजन है? वहाँ ऐसा लिया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो वीतराग के घर की बात है। उसे सूक्ष्म तो पड़ती है क्योंकि यह बात चलती नहीं। बाहर में यह प्रवृत्ति करो, और यह करो और यह करो, यह छोड़ो। कुछ करना और छोड़ना आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! ज्ञान है, ज्ञान।

इसलिए अच्युति को (अविनाशीपने को, शाश्वत दशा को)... चाहनेवाले जीव को, जिसे शाश्वत्—आत्मा की शाश्वत् दशा, मोक्षदशा चाहनेवाले जीव को ज्ञान की भावना भाना चाहिए। ज्ञान की भावना भाना चाहिए। कोई दया, दान, व्रत, व्यवहार करना चाहिए, ऐसा नहीं। आहाहा! भावना का अर्थ एकाग्रता है। भावना का अर्थ विकल्प नहीं है। इसलिए अच्युति को (अविनाशीपने को, शाश्वत दशा को) चाहनेवाले जीव को... मोक्ष के चाहनेवाले जीव को ज्ञान की भावना... (भाना चाहिए)। आहाहा! मैं तो ज्ञान हूँ। सर्व को जाननेवाला, ऐसा कहना, वह भी मेरा स्वभाव है। पर को जाने इसलिए व्यवहार हुआ, ऐसा भी नहीं। मैं तो जाननेवाला हूँ, ऐसी भावना भाना चाहिए। ऐसी भावना करना चाहिए। इतना सब करने का छोड़कर अकेला यह करना? पूरे दिन बाहर की सिरपच्ची में पड़े हैं।

आचार्य महाराज कहते हैं, जिसे मोक्ष की अभिलाषा है, अविनाशी दशा की भावना है, वह ज्ञान की भावना करे। मैं ज्ञानस्वरूप त्रिकाल हूँ। उसकी भावना—एकाग्रता (करे), दूसरी बात छोड़ दे। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय बीच में आता है, परन्तु उसे भी जानना, वह व्यवहार का उपचार है। क्या कहा? अपने को जानकर अनुभव में रहता है और व्यवहाररत्नत्रय ज्ञात हुआ तो व्यवहाररत्नत्रय को जाना, वह भी एक सद्भूत उपचार है। क्योंकि जाननेवाली पर्याय अपनी है तो सद्भूत है और अपनी चीज़ नहीं, इसलिए उपचार है तथा भेद पड़ा, इसलिए व्यवहार है। आहाहा! अब ऐसी बातें! आचार्य महाराज ने स्वयं के लिये यह बनाया है। मेरी भावना के लिये मैंने यह बनाया है। उसमें यह चीज़ है। लोगों को उसमें से बहुत मिले, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

इसलिए अच्युति को (अविनाशीपने को, शाश्वत दशा को)... अर्थात् मोक्ष । मोक्षदशा को चाहनेवाले जीव को ज्ञान की भावना भाना चाहिए । जीव तो ज्ञानस्वरूप है, इसलिए ज्ञान की भावना भाना चाहिए । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ज्ञान की पर्याय हैं । भले दर्शन की पर्याय है परन्तु वह भी ज्ञान... ज्ञानस्वरूपी भगवान् चैतन्य दल अनन्त गुण का पिण्ड रस... आहाहा ! बनाते हैं न ? काशीफल-काशीफल । काशीफल की बेल है, वह पतली है । काशीफल की बेल पतली है और पकता है पौन-पौन मण का । हिन्दुस्तान में तो उसकी खेती करते हैं । देखा है । आहाहा !

इसी प्रकार भगवान् शरीरप्रमाण है, परन्तु उसकी महिमा और ज्ञान और अनन्त... अनन्त... अनन्त... है । ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, शान्ति अनन्त, वीर्य अनन्त, प्रभुता अनन्त, स्वच्छता अनन्त, कर्ता अनन्त, कर्म अनन्त, करण अनन्त, शान्ति अनन्त, प्रभुता अनन्त । आहाहा ! और वह भी एक गुण में जो भाव है, उस गुण में अनन्त गुण के जो भाव हैं, उनका एक गुण में रूप है । क्या कहा ?

एक गुण में सब गुण का रूप है । जैसे ज्ञान जानता है, परन्तु जानता है और अस्तित्व गुण भिन्न है । तो भी ज्ञान 'है' ऐसा अस्तित्व का रूप ज्ञान में भी है । ज्ञान है, वह अस्तित्व आया । आहाहा ! अस्तित्वगुण उसमें नहीं आया, परन्तु अस्तित्व का रूप आया । ज्ञान है । आहाहा ! वीतराग की बातें अलग प्रकार की है, भाई ! आहाहा ! प्रभु परिचय चाहिए, थोड़ा अभ्यास चाहिए ।

अनन्त काल से भटकता है । चौरासी के अवतार में कहीं पता नहीं । यहाँ से वापस कहाँ जाएगा, उसका इसे निर्णय करना पड़ेगा । आहाहा ! देह तो छूट जाएगा, उसकी तो अवधि है । फिर सत्ता तो आत्मा की रहनेवाली है । आत्मा का अस्तित्व तो रहेगा । तो अस्तित्व कहाँ रहेगा ? यहाँ से अन्यत्र जाना है । आहाहा ! यदि सच्चा ज्ञान, सच्चा दर्शन, सच्चे चारित्रादि (प्रगट किये होंगे) तो वह मोक्षमार्ग में जाएगा । आहाहा ! और उस मोक्षमार्ग के अतिरिक्त राग-द्वेषादि करे... आहाहा ! अकेला राग, क्रोध, मान, माया... सूक्ष्म है, भाई ! राग की बात बहुत सूक्ष्म है । द्वेष सूक्ष्म है, क्रोध-मान-माया सूक्ष्म है । यदि सूक्ष्म शल्य रह जाए तो मरकर तिर्यच-पशु होगा क्योंकि सीधा मार्ग ग्रहण नहीं किया । टेडा मार्ग पकड़ा । मनुष्य ऐसे सीधे हैं । पशु आडे हैं । आडा कषाय का मार्ग ग्रहण किया तो उस रास्ते से पशु होगा । आहाहा !

मुमुक्षु : यह सब पैसेदार पशु ही बननेवाले हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेदार धूल में भी नहीं हैं । था कब ? यह तो हमारे भाई को कहा था । मनसुख का पिता । भाई ही होता है न ? हमारी बुआ का लड़का होता था । बुआ का लड़का । 'उगामेड़ी' कहा, बहुत यह पूरे दिन मेहनत करते हैं, गाँव में साधु आवे तो सामने देखे नहीं । रात्रि में जाए । वे साधु सवेरे आठ बजे (आवे), यह बारह घण्टे तक सामने देखे नहीं । किसकी लगायी है ? क्या किया है तूने यह ? कहाँ जाना है ? कहा । पशु होगा, याद रखना । ऐई ! मनसुख । (संवत्) १९६४ के वर्ष । तेरे जन्म से पहले । तेरा जन्म (संवत्) १९७४ । यह तो ६४ के वर्ष, साठ वर्ष पहले । आहाहा ! पूरे दिन माया, लोभ, राग, इच्छा का ही घोंटन । प्रभु ! तुझे कहाँ जाना है ? आहाहा ! इच्छा के असंख्य प्रकार हैं और इच्छा, वह लोभ है । लोभ, वह राग है । आहाहा ! उस असंख्य प्रकार के राग के सेवन में प्रभु कहते हैं कि आडा हो जाएगा । वर्तमान में आडायी (वक्रता) की है न ? पशु आड़े होते हैं । गाय, भैंस, बिच्छु ऐसे आड़े होते हैं, सीधे नहीं । ओहोहो ! गोम्मटसार में पाठ है । गोम्मटसार में । प्रभु ! ऐसा अवतार न देख । आहाहा !

यहाँ तो यह वहाँ तक ले जाते हैं कि मोक्ष को चाहनेवाला । आहाहा ! अच्युति अविनाशी पदवी प्राप्त हुई तो वहाँ से चलना नहीं होता । आहाहा ! ऐसी मोक्षदशा पाने के लिये ज्ञान की भावना भानी चाहिए । ज्ञान अर्थात् आत्मा । आहाहा ! यह सब पूरे दिन यह करना... करना... करना... ज्ञान की भावना कब करना ? आहाहा ! भाई ! मार्ग कोई अलग है । वीतराग का मार्ग दुनिया के साथ सिफारिश चले, ऐसा नहीं है । कुदरत में किसी की सिफारिश... सिफारिश को क्या कहते हैं ?

जो स्वभाव जिस प्रकार से होता है, उस अनुसार यदि न माने और उससे विपरीत किया तो चार गति में भटकेगा । आहाहा ! उस ज्ञान की भावना करने से मोक्ष मिलेगा । आहाहा ! कुछ करने-फरने की बात नहीं है । मैं दूसरे को पढ़ाऊँ और पुस्तक बनाऊँ... भाई नहीं आये ? हीरालाल नहीं आये ? हीरालाल । हिन्दुस्तान में छह हजार मन्दिर हैं । छह हजार दिगम्बर मन्दिर । उन सब मन्दिरों में एक-एक पुस्तक भेंट देनी है । छह हजार पुस्तक भेंट देनेवाले हैं । पूरे हिन्दुस्तान में १-१-१ । न माने उसे देना है । मन्दिर में रखना । बहिन की पुस्तक । बहिन की पुस्तक बहुत अलौकिक है । उसके अर्थ बहुत सूक्ष्म हैं । आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जीव को मोक्ष की चाहना हो, उसे ज्ञान की भावना आना चाहिए। कहीं ऐसा नहीं कहा कि ऐसे पढ़ना या छह द्रव्य को जानना। इस ज्ञान में सब ज्ञान आ जाता है। अपना ज्ञान हुआ, वहाँ ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, उसमें सब आ जाता है। आहाहा! आचार्य महाराज पुकार करते हैं। कलश है न? पद्मप्रभमलधारिदेव। ज्ञान की भावना... बहुत लिया। ओहोहो! मैं तो ज्ञानस्वरूपी हूँ। किसी चीज़ को करना-फरना, छोड़ना-रखना, रक्षा करना, वह मेरे अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! तो फिर यह स्त्री-पुत्र-परिवार को कहाँ छोड़ना। आहाहा!

मुमुक्षु : स्त्री, पुत्र कहाँ आड़े आये? अपना राग आड़े आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर संयोग कहाँ बाधक है? राग बाधक है। नारकी में भी नारकी को जो प्रतिकूलता है, उसका दुःख नहीं है, संयोग का दुःख किसी को नहीं है। संयोग पर लक्ष्य जाने से राग होता है, उसका दुःख है। समझ में आया? यहाँ लोहा स्पर्श करे तो उसका दुःख नहीं है। उस ओर लक्ष्य जाए अं हं.. (होता है), उसका दुःख है। आहाहा! गजब बात है। वीतराग की बात जगत से अलग प्रकार है। आहाहा! सिर पर घन पड़े, उसका दुःख नहीं, मात्र उस ओर लक्ष्य जाने पर ठीक नहीं है, अठीक है, ऐसा द्वेष करता है, उसका दुःख है। क्योंकि घन मारे तो घन तो सिर को स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! वह वीतराग तीन लोक के नाथ की वाणी।

यहाँ तो वजन कहाँ है? कि जीव को ज्ञान की भावना भाना चाहिए। सब छोड़कर, चाहे जितना जानपना हुआ। परन्तु वह अन्तरवस्तु भगवान ज्ञानस्वभाव, स्वभाव, हों! यह धारणा, वह नहीं। ग्यारह अंग की धारणा की, वह भी नहीं। वह तो बाहर से। सुनकर ग्यारह अंग का ज्ञान हुआ, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! अपना जो अबन्धस्वरूप प्रभु ज्ञान जो अबन्धस्वरूप अन्दर त्रिकाल है, जो त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल अखण्ड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय है। शुद्ध पारिणामिक परमभावरूप निज परमद्रव्य है, उसकी भावना भाना चाहिए। आहाहा! यहाँ लाकर रखा। कभी बात की नहीं। आहाहा!

श्लोक-२८६

(मंदाक्रांता)

ज्ञानं तावद्भवति सुतरां शुद्ध-जीव-स्वरूपं,
स्वात्मात्मानं नियतमधुना तेन जानाति चैकम् ।
तच्च ज्ञानं स्फुटित-सहजावस्थयात्मानमारात्,
नो जानाति स्फुटमविचलाद्भिन्नमात्मस्वरूपात् ॥२८६॥

तथा चोक्तं -

णाणं अविदिरित्तं जीवादो तेण अप्पगं मुणइ ।
जदि अप्पगं ण जाणइ भिण्णं तं होदि जीवादो ॥

और (इस १७०वीं गाथा की टीका के कलशरूप से टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

(वीरछन्द)

शुद्ध जीव का है स्वरूप यह ज्ञान अतः मेरा आतम ।
वर्तमान में निश्चय से है जाने अपना निज आतम ॥
और यदि यह ज्ञान प्रगट निज सहज परिणति के द्वारा ।
जाने नहीं प्रत्यक्ष आत्म को निश्चित उससे भिन्न हुआ ॥२८६॥

[श्लोकार्थः—] ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है; इसलिए (हमारा) निज आत्मा अभी (साधक दशा में) एक (अपने) आत्मा को नियम से (निश्चय से) जानता है। और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा द्वारा सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को न जाने तो वह ज्ञान अविचल आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा!२८६।

और इसी प्रकार (अन्यत्र गाथा द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

ज्ञान जीव से है अभिन्न इसलिए आत्मा को जाने ।
यदि आत्मा को नहीं जाने तो भिन्न सिद्ध हो आत्मा से ॥

[गाथार्थः—] ज्ञान जीव से अभिन्न है, इसलिए वह आत्मा को जानता है; यदि ज्ञान आत्मा को न जाने तो वह जीव से भिन्न सिद्ध होगा!

श्लोक - २८६ पर प्रवचन

कितना ? २८६ ?

और (इस १७०वीं गाथा की टीका के कलशरूप से टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) :—

ज्ञानं तावद्भवति सुतरां शुद्ध-जीव-स्वरूपं,
स्वात्मात्मानं नियतमधुना तेन जानाति चैकम् ।
तच्च ज्ञानं स्फुटित-सहजावस्थयात्मानमारात्,
नो जानाति स्फुटमविचलाद्भिन्नमात्मस्वरूपात् ॥२८६॥

श्लोकार्थः : ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है;... आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्र परमात्मा। आत्मा परमात्मा ही है, परमेश्वर है। यह ज्ञानस्वभाव से बराबर शुद्ध जीव स्वरूप है। यह ज्ञान जानना... जानना... जानना... अपने को, वह इसका स्वरूप है। जानने के अतिरिक्त दूसरा कोई अपना स्वरूप नहीं है। ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है; इसलिए (हमारा) निज आत्मा अभी (साधकदशा में) एक (अपने) आत्मा को नियम से (निश्चय से) जानता है। आहाहा! मुनिराज कहते हैं। साधकदशा है तो अपने आत्मा को ही जानते हैं। स्थिर होते हैं, उसे जानते हैं। आहाहा!

और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा द्वारा सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को न जाने... आहाहा! आत्मा अपना ज्ञानस्वरूप है, वह सीधा अपना ज्ञान, पर की अपेक्षा बिना वह ज्ञान यदि ज्ञान को न जाने तो वह ज्ञान अविचल आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा! उसे मुक्ति सिद्ध नहीं होगी, चार गति सिद्ध होगी। आहाहा! एक बार तो ऐसे ढीला कर दे, ऐसा है। पैसे का उत्साह और कीर्ति का उत्साह... आहाहा! नैरोबी में कहा था न? साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। अभी गये थे न? साढ़े चार सौ!

मुमुक्षु : ऐसी बात करो आप तो हमको बहुत मीठी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में मीठा नहीं। सबको... और पन्द्रह तो अरबपति। पन्द्रह अरबपति। एक अरबपति व्याख्यान में आता था। यहाँ तो यह बात है, बापू! यह सब हा.. हो.. और पच्चीस लाख का मकान बनावे - मन्दिर बनावे, इसलिए धर्म होगा - ऐसा नहीं है। यहाँ तो स्पष्ट बात है। साठ लाख इकट्ठे किये थे। पन्द्रह लाख पहले किये थे। परन्तु हमारे जाने के बाद छब्बीस दिन में पैंतालीस लाख इकट्ठे किये थे। साठ साल रुपये। वहाँ तो करोड़ोंपति है न? आहाहा! ऐसा पच्चीस लाख का मन्दिर का मकान बनावे, वह आत्मा बना सके, आत्मा वह मन्दिर बना सके, ऐसा तो नहीं। बनाने का भाव है, शुभभाव है, वह पुण्य है, बन्धन का कारण है। आहाहा! तो भी आये बिना नहीं रहता। व्यवहार आता है। भक्ति, पूजा, दया, दान के शुभभाव आते हैं, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! पैसे खर्च किये, इसलिए मोक्ष निकट हो जाएगा, तो गरीब लोगों को रोना पड़ेगा।

यहाँ तो आत्मा यहाँ ऋद्धि पड़ी है तेरे पास। गरीब और धनवान सबके पास आत्मा पड़ा है। है, उसकी भावना करनी है। आहाहा! है? और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा द्वारा सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को न जाने तो वह ज्ञान अविचल... अर्थात् मोक्ष। आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा! अविचल दशा से तो भिन्न होगा, अपने स्वरूप में नहीं रहेगा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात आयी है। थोड़ा न समझ में आये तो रात्रि को प्रश्न करना। ज्ञान पर को जाने, यह तो व्यवहार, परन्तु अपने को जाने, यह निश्चय है। आहाहा! न जाने, ऐसा नहीं है। भगवान चैतन्य सूर्य, चैतन्यप्रकाश का समुद्र, चैतन्यप्रकाश का सागर है। उसका ध्यान कर, उसकी भावना कर, यह मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)